अध्यात्मवाद और विज्ञान

(जैन धर्म के विशेष संदर्भ में)

लेखक

डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक : प्राच्य विद्या पीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्मवाद और विज्ञान

(जैन धर्म के विशेष सन्दर्भ मे)

-डा. सागरमल जैन

मानव जाति को दु:खों से मुक्त करना ही भगवान् महावीर का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होने इस तथ्य को गहराई से समझने का प्रयत्न किया कि दु:ख का मूल किसमें है। इसे स्पष्ट करते हुए उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि समस्त भौतिक और मानसिक दु:खों का मूल व्यक्ति की भोगासक्ति में है[१]। यद्यपि भौतिकवाद मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति के द्वारा दु:खों के निवारण का प्रयत्न करता है किन्तु वह उस कारण का उच्छेद नहीं कर सकता, जिससे दु:ख का यह स्रोत प्रस्फुटित होता है। भौतिक-वाद के पास मनुष्य की तृष्णा को समाप्त करने का कोई उपाय नहीं है। वह इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा मानवीय आकांक्षाओं को परितृप्त करना चाहता है किन्तु यह अग्नि में डाले गये घृत के समान उसे परिशान्त करने की अपेक्षा बढाता ही है। उत्तराध्ययनसूत्र में बहुत ही स्पष्टरूप से कहा गया है कि चाहे स्वर्ण और रजत के कैलास के समान असंख्य पर्वत भी खडे हो जाये किन्तु वे मनुष्य की तृष्णा को पूरा करने में असमथ है[२]। न केवल जैनधर्म अपितु सभी आध्यात्मिक धर्मों ने एकमत से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि समस्त दु:खों का मूल कारण आसक्ति, तृष्णा या ममत्व बुद्धि है, किन्तु तृष्णा की समाप्ति का उपाय इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं है। भौतिकवाद हमें सुख और सुविधा के साधन तो दे सकता है, किन्तु वह मनुष्य की आसक्ति या तृष्णा का निराकरण नहीं कर सकता। इस दिशा मे उसका प्रयत्न तो टहनियों को काटकर जड को सींचने के समान है। जैन आगमों में स्पष्टरूप से कहा गया है कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है, उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है[३]। यदि हम मानव जाति को स्वार्थ, हिंसा, शोषण, भ्रष्टाचार एवं तज्जनित दु:खों से मुक्त करना चाहते है तो हमें भौतिकवादी दृष्टि का त्याग करके आध्यात्मिक दृष्टि का विकास करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मवाद क्या है ?

किन्तु यहाँ हमें यह समझ लेना होगा कि अध्यात्मवाद से हमारा तात्पर्य क्या है ? अध्यात्म शब्द की व्युत्पति अधि+आत्म से है अर्थात् वह आत्मा की श्रेष्ठता या उच्चता का सूचक है। आचारांग में इसके लिये अज्झप्प या अज्झत्थ[४] शब्द का प्रयोग है जो आन्तरिक पवित्रता या आन्तरिक विशुद्धि का सूचक है। जैन धर्म के अनुसार अध्यात्मवाद वह दृष्टि है, जो यह मानती है कि भौतिक सुख-सुविधाओं की उपलब्धि ही अन्तिम लक्ष्य नहीं है। दैहिक एवं आर्थिक मूल्यों के परे उच्च मूल्य भी हैं और इन उच्च मूल्यों की उपलब्धि ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। जैन विचारकों की दृष्टि में अध्यात्मवाद का अर्थ है पदार्थ को परममूल्य न मानकर आत्मा को परममूल्य मानना। भौतिकवादी दृष्टि मानवीय दु:ख और सुख का आधार वस्तु को मानकर चलती है, उसके अनुसार सुख और दु:ख वस्तुगत तथ्य है । भौतिकवादी सुखों की लालसा में बाह्य वस्तुओं के पीछे दौड़ता है और उनकी उपलब्धि हेतु चोरी, शोषण एवं संग्रह जैसी सामाजिक बुराईयों को जन्म देता है। इसके विपरीत जैन आध्यात्मवाद हमें यह सिखाता है कि सुख और दु:ख का केन्द्र वस्तु में न होकर आत्मा में है। जैन दर्शन के अनुसार सुख-दु:ख आत्मकृत हैं।[५] अत: वास्तविक आनन्द की उपलब्धि पदार्थों से न होकर आत्मा से होती है। उत्तराध्ययनसूत्र में स्पष्टरूप से कहा गया है कि आत्मा ही अपने सुख-दु:खों का कर्ता और भोक्ता है। वही अपना मित्र है और वही अपना शत्रु है। सुप्रतिष्ठित अर्थात सद्गुणों में स्थित आत्मा मित्र है और दुष्प्रतिष्ठित अर्थात् दुर्गुणों में स्थित आत्मा शत्रु है[६] । आतुरप्रकरण नामक जैन ग्रन्थ में अध्यात्म का हार्द स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ज्ञान और दर्शन से युक्त शाश्वत आत्मतत्व ही मेरा है, शेष सभी बाह्य पदार्थ संयोग से उपलब्ध हुए हैं। इसलिए वे मेरे अपने नहीं है। इन संयोगजन्य उपलब्धियों को अपना मान लेने या उन पर ममत्व रखने के कारण ही जीव दु:ख-परम्परा को प्राप्त होता है अत: उन सांयोगिक पदार्थों के प्रति ममत्व भाव का सर्वथा विसर्जन कर देना चाहिए[७] । संक्षेप में जैन अध्यात्मवाद के अनुसार देह आदि सभी आत्मेतर पदार्थों के प्रति ममत्व बुद्धि का त्याग ही साधना का मूल उत्स है। वस्तुत: जहाँ अध्यात्मवाद पदार्थ के स्थान पर आत्मा को अपना साध्य मानता है, वहाँ भौतिकवाद में पदार्थ ही परम मूल्य बन जाता है। अध्यात्मवाद में आत्मा का ही परम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य होता है। जैन अध्यात्मवाद आत्मोपलब्धि के लिए पदार्थों के प्राति ममत्व बुद्धि का त्याग आवश्यक मानता है । उसके अनुसार ममता के विर्सजन से ही समता (Equanimity) का सर्जन होता है।[८]

जैन अध्यात्मवाद का लक्ष्य आत्मोपलब्धि

जैनधर्म में ममत्व के विसर्जन को ही आत्मोपलब्धि का एकमात्र उपाय इसलिए माना गया है कि जब तक व्यक्ति में ममत्व बुद्धि या आसक्ति भाव रहता है तब तक व्यक्ति की दृष्टि 'स्व' में नहीं अपितु 'पर' अर्थात् पदार्थ में केन्द्रित रहती है। वह पर में स्थित होता है। यह पदार्थ केन्द्रित दृष्टि ही या पर में स्थित होना ही भौतिकवाद का मूल आधार है। जैन दार्शनिकों के अनुसार 'पर' अर्थात् आत्मेतर वस्तुओं में अपनत्व का भाव और पदार्थ को परम मूल्य मानना, यही भौतिकवाद या मिथ्या दृष्टि का लक्षण है। आत्मवादी या अध्यात्मवादी व्यक्ति की दृष्टि पदार्थ-केन्द्रित न होकर आत्म-केन्द्रित होती है। वह आत्मा को ही परम मूल्य मानता है और अपने स्वस्वरूप या स्वभावदशा की उपलब्धि को ही अपनी साधना का लक्ष्य बनाता है इसे ही जैन पारिभाषिक शब्दावली में सम्यक् दृष्टि कहा गया है। भौतिकवाद मिथ्यादृष्टि है और अध्यात्मवाद सम्यक् दृष्टि है।

आत्मा का स्वरूप एवं साध्य

यहाँ स्वाभविकरूप से यह प्रश्न उठ सकता है कि जैनधर्म में आत्मा का स्वरूप क्या है ? आचारांगसूत्र में आत्मा के स्वरूप का स्पष्ट लक्षण का करते हुए कहा गया है कि जो आत्मा है वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। इस प्रकार ज्ञाताभाव में स्थित होना ही स्व स्वभाव में स्थित होना है । आधुनिक मनोविज्ञान में चेतना के तीन पक्ष माने गये हैं -ज्ञानात्मक, भावात्मक और संकल्पात्मक, उसमें भावात्मक और संकल्पात्मक पक्ष वस्तुत: भोक्ताभाव और कर्त्ताभाव के सूचक है। जब तक आत्मा कर्त्ता (doer) या भोक्ता (enjoyer) होता है तब तक वह स्व स्वरूप को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि यहाँ चित्त-विकल्प या आकांक्षा बनी रहती है। अत: उसके द्वारा चित्त-समाधि या आत्मोपलब्धि संभव नहीं है। विशुद्ध ज्ञाताभाव या साक्षी भाव ही ऐसा तथ्य है जो आत्मा को निराकुल समाधि की अवस्था में स्थित कर दु:खों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मुक्त कर सकता है।

एक अन्य दृष्टि से जैनधर्म में आत्मा का स्वरूप-लक्षण समत्व (equanimity) भी बताया गया है। भगवतीसूत्र में गौतम ने महावीर के सम्मुख दो प्रश्न उपस्थित किये। आत्मा क्या है और उसका साध्य क्या है ? महावीर ने इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे वे जैन धर्म के हार्द को स्पष्ट कर देते हैं। उन्होंने कहा था कि आत्मा समत्व स्वरूप है और समत्व की उपलब्धि कर लेना यही आत्मा का साध्य है।[९] आचारांगसूत्र में भी समता को धर्म कहा गया है।[१०] वहाँ समता को धर्म इसलिए कहा गया है कि वह हमारा स्व स्वभाव है और वस्तु स्वभाव ही धर्म है (वत्थु सहावो धम्मो)। जैन दार्शनिकों के अनुसार स्वभाव से भिन्न आदर्श की कल्पना अयथार्थ है। जो हमारा मूल स्वभाव और स्वलक्ष्ण है, वही हमारा साध्य हो सकता है। जैन परिभाषा में नित्य और निरपवाद वस्तु धर्म ही स्वभाव है। आत्मा का स्वस्वरूप और आत्मा का साध्य दोनों ही समता है। यह बात जीववैज्ञानिक दृष्टि से भी सत्य सिद्ध होती है। आधुनिक जीव विज्ञान में भी समत्व के संस्थापन को जीवन का लक्षण बताया गया है। यद्यपि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद 'समत्व' के स्थान पर 'संघर्ष' को जीवन का स्वभाव बताता है और कहता है कि "संघर्ष ही जीवन का नियम है, मानवीय इतिहास वर्ग संघर्ष की कहानी है"। किन्तु यह एक मिथ्या धारणा है। संघर्ष सदैव निराकरण का विषय रहा है। कोई भी चेतन सत्ता संघर्षशील दशा में नहीं रहना चाहती, वह संघर्ष का निराकरण करना ही चाहती है। यदि संघर्ष निराकरण की वस्तु है, तो उसे स्वभाव नहीं कहा जा सकता है। संघर्ष मानव इतिहास का एक तथ्य हो सकता है किन्तु वह मनुष्य के विभाव का इतिहास है, स्वभाव का नहीं। चैतसिक जीवन में तनाव या विचलन पाये जाते हैं, किन्तु वे जीवन के स्वभाव नहीं हैं क्योंकि जीवन की प्रक्रिया सदैव ही उन्हें समाप्त करने की दिशा में प्रयासशील है। चैतसिक जीवन का मूल स्वभाव यही है, कि वह बाह्य और आन्तरिक उत्तेजनाओं एवं संवेदनाओं से उत्पन्न विक्षोभों को समाप्त कर, समत्व को बनाये रखने का प्रयास करता है। अत: जैनधर्म में समता को आत्मा या चेतना का स्वभाव कहा गया है और उसे ही धर्म के रूप में परिभाषित किया गया है। यह सत्य है कि जैनधर्म में धर्म-साधना का मूलभूत लक्ष्य कामना, आसक्ति, राग-द्वेष और वितर्क आदि मानसिक असन्तुलनों और तनावों को समाप्त कर अनासक्त और निराकुल वीतराग चेतना की उपलब्धि माना गया है। आसक्ति या ममत्व बुद्धि राग और द्वेष के भाव उत्पन्न कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति को पदार्थापक्षी बनाती है। आसक्त व्यक्ति अपने को 'पर' में खोजता है। जबकि अनासक्त या वीतराग दृष्टि व्यक्ति को स्व में केन्द्रित करती है। दूसरे शब्दों में, जैनधर्म में वीतरागता की उपलब्धि को ही जीवन का परम लक्ष्य घोषित किया गया है। क्योंकि वीतराग ही सच्चे अर्थ में समभाव में अथवा साक्षी भाव मे स्थित रह सकता है। जो चेतना समभाव या साक्षी भाव में स्थित रह सकती है वही निराकुल दशा को प्राप्त है और जो निराकुल दशा को प्राप्त होती है, वही शाश्वत सुखों का आस्वाद करती है। जैनधर्म में आत्मोपलब्धि या स्वरूप-उपलब्धि को, जो जीवन का लक्ष्य माना गया है, वह वस्तुत: वीतराग दशा में ही सम्भव है और इसलिए प्रकारान्तर से वीतरागता को भी जीवन का लक्ष्य कहा गया है। वीतरागता का ही दूसरा नाम समभाव या साक्षीभाव है। यही समभाव हमारा वास्तविक स्वरूप है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेना ही हमारे जीवन का परम साध्य है।

साध्य और साधना मार्ग का आत्मा से अभेद

जैनधर्म में साधक, साध्य और साधनामार्ग तीनों ही आत्मा से अभिन्न माने गये है। आत्मा ही साधक है, आत्मा ही साध्य है, और आत्मा ही साधना मार्ग है। 'अध्यात्मतत्त्वालोक' में कहा गया है कि आत्मा ही संसार है और आत्मा ही मोक्ष है, जब तक आत्मा कषाय और इन्द्रियों के वशीभूत है, वह संसार है। किन्तु जब वह इन्हें अपने वशीभूत कर लेता है तो मुक्त कहा जाता हैं।[११] आचार्य अमृतचन्द्रसूरी समयसार की टीका में लिखते हैं आत्म कि द्रव्य की पर्याय का परिहार और शुद्ध आत्म तत्व की उपलब्धि ही सिद्धि है।[१२] आचार्य हेमचन्द्र ने भी साध्य और साधक में भेद बताते हुए योगशास्त्र में कहा है कि कषाय और इन्द्रियों से पराजित आत्मा बद्ध और उनको विजित करने वाला आत्मा ही प्रबुद्ध पुरुषों द्वारा मुक्त कहा जाता है।[१३] वस्तुत: आत्मा की वासनाओं से युक्त अवस्था ही बन्धन ह और वासनाओं तथा विकलपों से रहित शुद्धात्मदशा ही मोक्ष है। जैन अध्यात्मवाद का कथन है कि साधक का आदर्श उसके बाहर नहीं वरन् उसके अन्दर है। धर्म साधना के द्वारा जो कुछ पाया जाता है वह बाह्य उपलब्धि नहीं अपितु निज गुणों का पूर्ण प्रकटन है। हमारी मूलभूत क्षमतायें साधक अवस्था और सिद्ध अवस्था में समान ही है। साधक और सिद्ध अवस्थाओं में अन्तर क्षमताओं का नहीं, वरन् क्षमताओं को योग्यताओं में बदल देने का है। जिस प्रकार बीज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृक्ष के रूप में विकसित होने की क्षमता रखता है और वह वृक्ष रूप में विकसित होकर वह अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। वैसे ही आत्मा भी परमात्मदशा को प्राप्त करने की क्षमता रखता है और उसे उपलब्ध कर पूर्ण हो जाता है। जैन धर्म के अनुसार अपनी ही बीजरूप क्षमताओं को पूर्ण रूप से प्रकट करना ही मुक्ति है। जैन साधना 'स्व' को उपलब्ध करना है, निज में प्रसुप्त जिनत्व को अभिव्यक्त करना है। आत्मा को ही परमात्मा के रूप में पूर्ण बनाना है। इस प्रकार आत्मा का साध्य आत्मा ही है।

जैनधर्म का साधना मार्ग भी आत्मा से भिन्न नहीं हैं। हमारी ही चेतना के ज्ञान, भाव और संकल्प के पक्ष सम्यक् दिशा में नियोजित होकर साधनामार्ग बन जाते है। जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को, जो मोक्ष कहा गया है, उसका मूल हार्द इतना ही है कि चेतना के ज्ञानात्मक, भावात्मक और संकल्पात्मक पक्ष क्रमशः ज्ञान, सम्यक् चारित्र के रूप में साधनामार्ग बन जाते है।

इस प्रकार साधनामार्ग भी आत्मा ही है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते है, कि मोक्षकामी को आत्मा को जानना चाहिए, आत्मा पर ही श्रद्धा करना चाहिए और आत्मा की ही अनुभूति (अनुचरित) करना चाहिए। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन, प्रत्याख्यान (त्याग), संवर (संयम) और योग सब अपने आपको पाने के साधन हैं। क्योंकि यही आत्मा ज्ञान में है, दर्शन में है, चारित्र में है, त्याग में है, संवर में है और योग में है[१४]। जिन्हें व्यवहारनय से ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहा गया है, वे निश्चयनय से तो आत्मा ही हैं।

त्रिविध साधनामार्ग

जैनदर्शन में मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्रिविध साधनामार्ग बताया गया है। तत्त्वार्थसूत्र में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को मोक्षमार्ग कहा गया है।[१५] उत्तराध्ययनसूत्र मे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप ऐसे चतुर्विध मोक्षमार्ग का भी विधान है[१६], किन्तु जैन आचार्यों ने तप का अन्तर्भाव चारित्र में करके इस त्रिविध साधना मार्ग को ही मान्य किया है।

सम्भवतः यह प्रश्न हो सकता है कि त्रिविध साधनामार्ग का ही विधान क्यों किया गया है? वस्तुतः त्रिविध साधनामार्ग के विधान में जैनाचार्यों की एक गहन मनोवैज्ञानिक सूझ रही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानवीय चेतना के तीन पहलू माने गए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है-१. ज्ञान २. भाव और ३. संकल्प। चेतना के इन तीनों पक्षों के सम्यक् विकास के लिए ही त्रिविध साधनामार्ग का विधान किया गया है। चेतना के भावात्मक पक्ष को सही दिशा में नियोजित करने के लिए सम्यक् दर्शन, ज्ञानात्मक पक्ष के सही दिशा में नियोजन के लिए सम्यक् ज्ञान और संकल्पात्मक पक्ष को सही दिशा में नियोजित करने के लिए सम्यक् चारित्र का प्रावधान किया गया है।

जैन-दर्शन के समान ही बौद्ध-दर्शन में भी त्रिविध साधनामार्ग का विधान है। बौद्ध-दर्शन के इस त्रिविध साधनामार्ग के तीन अंग है- १. शील, २. समाधि और ३. प्रज्ञा[१७]

हिन्दू धर्म के ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग भी त्रिविध साधना मार्ग का ही एक रूप है। गीता में प्रसंगान्तर से त्रिविध साधनामार्ग के रूप में प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा का भी उल्लेख हैं[१८]। इसमें प्रणिपात श्रद्धा का परिप्रश्न ज्ञान का और सेवा कर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपनिषदों में श्रवण, मनन और निदिध्यासन के रूप में भी त्रिविध साधनामार्ग का प्रास्तुतीकरण हुआ है। यदि हम गहराई से देखें तो इनमें श्रवण श्रद्धा के, मनन ज्ञान के और निदिध्यासन कर्म के अन्तर्भूत हो सकते हैं। पाश्चात्य परम्परा में भी तीन आदेश उपलब्ध होते है-१. स्वयं को जानो (Know Thyself), २. स्वयं को स्वीकार करो (Accept Thyself) और ३. स्वयं ही बन जाओ (Be Thyself)[१९] पाश्चात्य चिन्तन के तीन आदेश ज्ञान, दर्शन और चारित्र के ही समकक्ष हैं। आत्मज्ञान में ज्ञान का तत्त्व, आत्मस्वीकृति में श्रद्धा का तत्त्व और आत्मनिर्माण में चारित्र का तत्त्व उपस्थित है।

जैन दर्शन	बौद्ध दर्शन	हिन्दू धर्म	गीता	उपनिषद	पाश्चात्यदर्शन
सम्यक् ज्ञान	प्रज्ञा	ज्ञान	परिप्रश्न	मनन	Know Thyself
सम्यक् दर्शन	समाधि	भक्ति	प्रणिपात	श्रवण	Accept Thyself
सम्यक् चारित्र	शील	कर्म	सेवा	निदिध्यासन	Be Thyself

त्रिविध साधनामार्ग और मुक्ति

कुछ भारतीय विचारकों ने इस त्रिविध साधनामार्ग के किसी एक ही पक्ष को मोक्ष की प्राप्ति का साधन मान लिया है। आचार्य शंकर मात्र ज्ञान से और रामानुज मात्र भक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की सम्भावना को स्वीकार करते है। लेकिन जैन दार्शनिक ऐसी किसी एकान्तवादिता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार तो ज्ञान, कर्म और भक्ति की समवेत साधना ही मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग है। इनमें से किसी एक के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के अभाव में आचरण सम्यक् नहीं होता है और सम्यक् आचरण के अभाव में मुक्ति भी नहीं होती है।[२०] इस प्रकार मुक्ति की प्राप्ति के लिए तीनों ही अंगो का होना आवश्यक है।

सम्यक् दर्शन का अर्थ

जैन आगमों में दर्शन शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है और इसके अर्थ के सम्बन्ध में जैन परम्परा में काफी विवाद रहा है। दर्शन शब्द को ज्ञान से अलग करते हुए विचारकों ने दर्शन को अन्तर्बोध या प्रज्ञा और ज्ञान को बौद्धिक ज्ञान कहा है। दर्शन शब्द का दृष्टिकोणपरक अर्थ भी लिया गया है। प्राचीन जैनागमों में दर्शन शब्द के स्थान पर दृष्टि शब्द का प्रयोग उसके दृष्टिकोणपरक अर्थ का द्योतक है। उत्तराध्ययनसूत्र एवं तत्त्वार्थसूत्र में दर्शन शब्द का अर्थ तत्वश्रद्धा भी माना गया है[२१]। परवर्ती जैन साहित्य में दर्शन शब्द को देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा या भक्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया। इस प्रकार जैन परम्परा में सम्यक् दर्शन—आत्म-साक्षात्कार, तत्त्व-श्रद्धा, अन्तर्बोध, दृष्टिकोण, श्रद्धा और भक्ति आदि अनेक अर्थों को अपने में समेटे हुए है।

सम्यक् दर्शन को चाहे यथार्थ दृष्टि कहें या तत्त्वार्थ श्रद्धा उसमें वास्तविकता की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं होता है। अन्तर होता है उनकी उपलब्धि की विधि में एक वैज्ञानिक स्वत: प्रयोग के आधार पर किसी सत्य का उद्‌घाटन कर वस्तुतत्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है किन्तु दूसरा वैज्ञानिक के कथनों पर विश्वास करके भी वस्तुतत्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है। यद्यपि यहाँ दोनो का ही दृष्टिकोण यथार्थ होगा, फिर भी एक ने स्वानुभूति में पाया है तो दूसरे ने उसे श्रद्धा के माध्यम से। श्रद्धा हो सम्यक् दृष्टि हो, तो भी यह अर्थ अन्तिम नहीं है, अन्तिम अर्थ स्वानुभूति ही है और यही सम्यक् दर्शन का वास्तविक अर्थ है। ऐसा सम्यग्दर्शन होता है, निर्विकार, निराकुल चित्तवृति सें, अत: प्रकारान्तर से उसे भी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शन के पाँच लक्षण

जैनधर्म में सम्यक् दर्शन के निम्न पाँच लक्षण बताये गये है:-
१. सम अर्थात समभाव, २. संवेग अर्थात् आत्मा के आनन्दमय स्वरूप की अनुभूति अथवा सत्याभीप्सा, ३. निर्वेद अर्थात् अनासक्ति या वैराग्य, ४. अनुकम्पा अर्थात् दूसरे व्यक्ति की पीड़ा को आत्मवत् पीड़ा समझना और उसके प्रति करुणा का भाव रखना और ५. आस्तिक्य अर्थात् पुण्य-पाप, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त और आत्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करना।

सम्यक् दर्शन के छह स्थान

जिस प्राकार बौद्ध-साधना के अनुसार दु:ख है, दु:ख का कारण है, दु:ख से निवृति हो सकती है और दु:खनिवृत्ति का मार्ग है इन चार आर्य-सत्यों की स्वीकृति सम्यग्दृष्टि है, उसी प्रकार जैन-साधना के अनुसार षट् स्थानकों (छह बातों) की स्वीकृत्ति सम्यक्दर्शन है- (१) आत्मा है, (२) आत्मा नित्य है, (३) आत्मा अपने कर्मों का कर्ता है, (४) आत्मा कृत कर्मों के फल का भोक्ता है, (५) आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सकता है और (६) मुक्ति का उपाय (मार्ग) है[२२]।
जैन तत्त्व-शास्त्र के अनुसार इन षट्स्थानकों पर दृढ़ प्रतीति सम्यग्दर्शन की साधना का आवश्यक अंग है। दृष्टिकोण की विशुद्धता एवं सदाचार दोनों ही इन पर निर्भर है; ये षट्स्थानक जैन-साधना के केन्द्र बिन्दु हैं।

सम्यक् ज्ञान का अर्थ-

दृष्टिकोण की विशुद्धि पर ही ज्ञान की सम्यक्ता निर्भर करती है। अत: जैन साधना का दूसरा चरण है सम्यक् ज्ञान। सम्यक्-ज्ञान को मुक्ति का साधन स्वीकार किया गया है, लेकिन कौन-सा ज्ञान मुक्ति के लिए आवश्यक है, यह विचारणीय है। जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान के दो रूप पाये जाते हैं। सामान्य दृष्टि से सम्यक्-ज्ञान वस्तुतत्त्व का उसके अनन्त पहलुओं से युक्त ज्ञान है और इस रूप में वह विचार शुद्धि का माध्यम है। जैन-दर्शन के अनुसार एकांगीज्ञान मिथ्यात्व है, क्योंकि वह सत्य के अनन्त पक्षों का अपलाप करता है। जब तक आग्रह बुद्धि है, तब तक वीतरागता सम्भव ही नहीं है और जब तक वीतराग दृष्टि नहीं है, तब तक यथार्थ ज्ञान भी असम्भव है। जैन-दर्शन के अनुसार सत्य के अनेक पहलुओं को जानने के लिए अनेकान्त दृष्टि सम्यक्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान की अनिवार्य शर्त है। एकान्त दृष्टि या वैचारिक आग्रह अपने में निहित छद्म राग के कारण सत्य को रंगीन कर देता है। अत: एकान्त और आग्रह सत्य के साक्षात्कार में बाधक हैं जैन साधना की दृष्टि से वीतरागता को उपलब्ध करने के लिए वैचारिक आग्रह का परित्याग और अनाग्रही दृष्टि का निर्माण आवश्यक है और इसके माध्यम से प्राप्त ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान का अर्थ है वस्तु को उसके अनेक पहलुओं से जानना।

जैनधर्म में एक अन्य दृष्टि से सम्यक् ज्ञान आत्म-अनात्म का विवेक है। यह सही है कि आत्मतत्त्व को ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता, उसे ज्ञाता ज्ञेय के द्वैत के आधार पर नहीं जाना जा सकता क्योंकि वह स्वयं ज्ञान-स्वरूप है, ज्ञाता है और ज्ञाता कभी ज्ञेय नहीं बन सकता, अत: आत्मज्ञान दुरुह है। लेकिन अनात्म तत्त्व तो ऐसा है जिसे हम ज्ञाता और ज्ञेय के द्वैत के आधार पर जान सकते हैं। सामान्य व्यक्ति भी अपने साधारण ज्ञान के द्वारा इतना तो जान ही सकता है कि उसके ज्ञान के विषय क्या हैं? और इससे वह यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जो उसके ज्ञान के विषय हैं, उसके स्वस्वरूप नहीं है, वे अनात्म हैं। सम्यक्-ज्ञान आत्म-ज्ञान है, किन्तु आत्मा को अनात्म के माध्यम से ही पहचान जा सकता है। अनात्म के स्वरूप को जानकर अनात्म से आत्म का भेद करना, यही भेद विज्ञान है और यही जैन-दर्शन में सम्यक् ज्ञान का मूल अर्थ है।

इस प्रकार जैन-दर्शन में सम्यग्ज्ञान आत्म-अनात्म का विवेक है। जैनों की पारिभाषिक शब्दावली में इसे भेद-विज्ञान कहा जाता है। आचार्य अमृतचन्द सूरि के अनुसार जो कोई सिद्ध हैं, वे इस आत्म-अनात्म के विवेक या भेद विज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जो बन्धन में हैं, वे इसके अभाव के कारण ही हैं[२३]। आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में इस भेद विज्ञान का अत्यन्त गहन विवेचन किया है, किन्तु विस्तार पूर्वक यह समग्र विवेचना यहाँ सम्भव नहीं है[२४]।

सम्यक् चारित्र का अर्थ

जैन परम्परा में साधना का तीसरा चरण सम्यक् चारित्र है। इसके दो रूप माने गए हैं १. व्यवहार चारित्र और २. निश्चय चारित्र। आचरण का बाह्य पक्ष या आचरण के विधि-विधान व्यवहार चारित्र कहे जाते है। जबकि आचरण की अन्तरात्मा निश्चय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र कही जाती है। जहां तक नैतिकता के वैयक्तिक दृष्टिकोण का प्रश्न है अथवा व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का प्रश्न है, निश्चयात्मक चारित्र ही उसका मूलभूत आधार है। लेकिन जहां तक समाजिक जीवन का प्रश्न है, चारित्र का बाह्य पक्ष ही प्रमुख है।

निश्चय दृष्टि (Real view point) से चारित्र का सच्चा अर्थ समभाव या समत्व की उपलब्धि है। मानसिक या चैतिसिक जीवन में समत्व की उपलब्धि-यही चारित्र का पारमार्थिक या नैश्चयिक पक्ष है। वस्तुतः चारित्र का यह पक्ष आत्म-रमण की स्थिति है। नैश्चयिक चारित्र का प्रादुर्भाव केवल अप्रमत्त अवस्था में ही होता है। अप्रमत चेतना की अवस्था में होने वाले सभी कार्य शुद्ध ही माने गए हैं। चेतना में जब राग, द्वेष, कषाय और वासनाओं की अग्नि पूरी तरह शांत हो जाती है, तभी सच्चे नैतिक एवं धार्मिक जीवन का उद्‌भव होता है और ऐसा ही सदाचार मोक्ष का कारण होता है। साधक जब जीवन की प्रत्येक क्रिया के सम्पादन में आत्म-जाग्रत होता है, उसका आचरण बाह्य आवेगों और वासनाओं से चलित नहीं होता है, तभी वह सच्चे अर्थों में नैश्चयक चारित्र का पालन-कर्ता माना जाता है। यही नैश्चयिक चारित्र मुक्ति का सोपान कहा गया है।

व्यवहार चारित्र

व्यवहार चारित्र का सम्बन्ध आचार के नियमों के परिपालन से हैं। व्यवहार चारित्र को देशव्रती चारित्र और सर्वव्रती-चारित्र ऐसे दो वर्गों में विभाजित किया गया है। देशव्रतीचारित्र का सम्बन्ध गृहस्थ उपासकों से और सर्वव्रतीचारित्र का सम्बन्ध श्रमण वर्ग से है। जैन-परम्परा में गृहस्थाचार के अन्तर्गत अष्टमूलगुण, षट्‌कर्म, बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमाओं का पालन आता है। श्रमणाचार के अन्तर्गत पंचमहाव्रत, रात्रि भोजन निषेध, पंचसमिति, तीन गुप्ति, दस यतिधर्म, बारह अनुप्रेक्षाएं, बाईस परीषह, अट्ठाइस मूलगुण, बावन अनाचार आदि का विवेचन उपलब्ध है। इसके अतरिक्त भोजन, वस्त्र, आवास सम्बनधी विधि-निषेध भी हैं।

साधनत्रय का पूर्वापर सम्बन्ध

दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पूर्वापरता को लेकर जैन विचारणा में कोई विवाद नहीं है। जैन आगमों में दर्शन की प्राथमिकता बताते हुए कहा गया है कि सम्यक् दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अभाव में सम्यक् चारित्र नहीं होता। भक्तपरिज्ञा में कहा गया है कि 'दर्शन से भ्रष्ट (पतित) ही वास्तविक रूप में भ्रष्ट है, चारित्र से भ्रष्ट, भ्रष्ट नहीं है क्योंकि जो दर्शन से युक्त है, वह संसार में अधिक परिभ्रमण नहीं करता, जबकि दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति संसार से मुक्त नहीं होता है।[२५] कदाचित् चारित्र से रहित सिद्ध हो भी जावे लेकिन दर्शन से रहित कभी भी मुक्त नहीं होता। वस्तुत: दृष्टिकोण या श्रद्धा ही एक तत्त्व है, जो व्यक्ति के ज्ञान और आचरण को सही दिशा निर्देश कर सकता है। आचार्य भद्रबाहु आचारांग निर्युक्ति में कहते हैं कि सम्यक् दृष्टि से ही तप, ज्ञान और सदाचरण सफल होते हैं।[२६]

जहां तक ज्ञान और चारित्र का सम्बन्ध है, जैन विचारकों ने चारित्र को ज्ञान के बाद ही स्थान दिया है। उत्तराध्ययनसूत्र में यही बताया गया है कि सम्यक् ज्ञान के अभाव में सदाचरण नहीं होता। इस प्रकार जैन दर्शन में आचरण के पूर्व सम्यक् ज्ञान का होना आवश्यक है फिर भी वे यह स्वीकार नहीं करते हैं कि अकेला ज्ञान ही मुक्ति का साधन हो सकता है। महावीर ने ज्ञान और आचरण दोनों से समन्वित साधना पथ का उपदेश दिया है। सूत्रकृतांग में महावीर कहते है कि 'मनुष्य चाहे वह ब्राह्मण हो, भिक्षुक हो अथवा अनेक शास्त्रों का जानकार हो यदि उसका आचरण अच्छा नहीं है, तो वह अपने कृत्य कर्मों के कारण दु:खी ही होगा'[२७]। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि अनेक भाषाओं एवम् शास्त्रों का ज्ञान आत्मा को शरणभूत नहीं होता। दुराचरण में अनुरक्त अपने आप को पंडित मानने वाले लोग वस्तुत: मूर्ख ही है। वे केवल वचनों से ही अपनी आत्मा को आश्वासन देते हैं।[२८] आवश्यक निर्युक्ति में ज्ञान और आचरण के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन अत्यंत विस्तृत रूप से किया गया है। आचार्य भद्रबाहु कहते हैं कि 'आचरणविहीन अनेक शास्त्रों के ज्ञाता भी संसार समुद्र से पार नहीं होते'। ज्ञान और क्रिया के पारस्परिक सम्बन्ध को लोक प्रसिद्ध अंध-पंगु न्याय के आधार पर स्पष्ट करते हुए आचार्य लिखते हैं कि जिस प्रकार एक चक्र से रथ नहीं चलता है या अकेला अंधा अथवा अकेला पंगु इच्छित साध्य को नहीं पहुँचते वैसे ही मात्र क्रिया या मात्र ज्ञान से मुक्ति नहीं होती, अपितु दोनों के सहयोग से ही मुक्ति होती है।[२९]

जैन पर्वों की आध्यात्मिक प्रकृति

न केवल जैन साधना-पद्धति की प्रकृति ही अध्यात्मवादी है अपितु जैन पर्व भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलतः अध्यात्मवादी ही है। जैन पर्व आमोद-प्रमोद के लिए न होकर, आत्म साधना और तप साधना के लिए होते हैं उनमें मुख्यतः तप, त्याग, व्रत एवं उपवासों की प्रधनता होती है। जैनों के प्रसिद्ध पर्वों में श्वेताम्बर परम्परा में पर्युषण पर्व और दिगम्बर परम्परा में दशलक्षण पर्व है, जो भाद्रपद में मनाये जाते हैं। इन दिनों में जिन प्रतिमाओं की पूजा, उपवास आदि व्रत तथा धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय यही साधकों की दिनचर्या के प्रमुख अंग होते है। इन पर्वों के दिनों में जहाँ दिगम्बर परम्परा में प्रतिदिन क्षमा, विनम्रता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, ब्रह्मचर्य आदि दस धर्मों (सद्गुणों) की विशिष्ट साधना की जाती है, वहाँ श्वेताम्बर परम्परा में इन दिनों में प्रतिक्रमण के रूप में आत्म-पर्यावलोचन किया जाता है। श्वेताम्बर परम्परा का अन्तिम दिन संवत्सरी पर्व के नाम से मनाया जाता है और इस दिन समग्र वर्ष के चारित्रिक स्खलन या असदाचरण और बैर-विरोध के लिए आत्म पर्यावलोचन (प्रतिक्रमण) किया जाता है एवं प्रायश्चित ग्रहण किया जाता है। इस दिन शत्रु-मित्र आदि सभी से क्षमा-याचना की जाती है। इस दिन जैन साधक का मुख्य उद्घोष होता है- मैं सब जीवों को क्षमा प्रदान करता हूँ और सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी सभी प्राणीवर्ग से मित्रता है और किसी से कोई वैर-विरोध नहीं है। इन पर्व के दिनों में अहिंसा का पालन करना और करवाना भी एक प्रामुख कार्य होता है प्राचीन काल में अनेक जैनाचार्यों ने अपने प्रभाव से शासकों द्वारा इन दिनों को अहिंसक दिनों के रूप में घोषित करवाया था। इस प्रमुख पर्व के अतिरिक्त अष्टाह्निका पर्व, श्रुत पंचमी तथा विभिन्न तीर्थकरों के गर्भ-प्रवेश, जन्म, दीक्षा, कैवल्य प्राप्ति एवं निर्वाण दिवसों को भी पर्व के रूप में मानाया जाता है। इन दिनों में भी सामान्यतया व्रत रखा जाता है और जिन प्रतिमाओं की विशेष समारोह के साथ पूजा की जाती है। दीपावली का पर्व भी भगवान् महावीर के निर्वाण दिवस के रूप में जैन समुदाय के द्वारा बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है।

जैन अध्यात्मवाद और लोक कल्याण का प्रश्न

यह सत्य है कि जैनधर्म संन्यासमार्गी धर्म है। उसकी साधना में आत्मशुद्धि और आत्मोपलब्धि पर अधिक जोर दिया गया है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जैन धर्म में लोक मंगल या लोक कल्याण का कोई स्थान ही नहीं है। जैनधर्म यह तो अवश्य मानता है कि वैयक्तिक साधना की दृष्टि से एकाकी जीवन अधिक उपयुक्त है, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके साथ-ही साथ वह यह भी मानता है कि उस साधना से प्राप्त सिद्धि का उपयोग सामाजिक कल्याण की दिशा में होना चाहिए। महावीर का जीवन स्वयं इस बात का साक्षी है, कि १२ वर्षों तक एकाकी साधना करने के पश्चात् वे पुनः सामाजिक जीवन में लौट आये। उन्होने चतुर्विध संघ की स्थापना की तथा जीवन भर उसका मार्ग-दर्शन करते रहे। जैनधर्म सामाजिक कल्याण और सामाजिक सेवा को आवश्यक तो मानता है, किन्तु वह व्यक्ति के सुधार से समाज के सुधार की दिशा में आगे बढ़ता है। व्यक्ति समाज की प्रथम इकाई है, जब तक व्यक्ति नहीं सुधरेगा तक तक समाज नहीं सुधर सकता है। जब तक व्यक्ति के जीवन में नैतिक और आध्यात्मिक चेतना का विकास नहीं होता तब तक सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था और शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। जो व्यक्ति अपने स्वार्थों और वासनाओं पर नियन्त्रण नहीं कर सकता, वह कभी सामाजिक हो ही नहीं सकता। लोकसेवक और जनसेवक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और द्वन्द्वो से दूर रहें - यह जैन आचार-संहिता का आधारभूत सिद्धान्त है। चरित्रहीन व्यक्ति सामाजिक जीवन के लिए घातक ही सिद्ध होगें। व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के निमित्त जो संगठन या समुदाय बनते हैं, वे सामाजिक जीवन के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। क्या चोर, डाकू और शोषकों का समाज, समाज कहलाने का अधिकारी है? महावीर की शिक्षा का सार यही है, कि वैयक्तिक जीवन में निवृत्ति ही सामाजिक कल्याण के क्षेत्र प्रवृत्ति का आधार बन सकती है। प्रश्न व्याकरणसूत्र में कहा गया है कि भगवान् का यह सुकथित प्रवचन संसार के सभी प्राणियों के रक्षण एवं करुणा के लिए है।[३०] जैन साधना में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- ये जो पाँच व्रत माने जाते हैं वे केवल वैयक्तिक साधना के लिए नहीं है, वे सामाजिक मंगल के लिए भी हैं। वे आत्म-शुद्धि के साथ ही हमारे सामाजिक सम्बन्धों की शुद्धि का प्रयास भी हैं। जैन दार्शनिकों ने आत्महित की अपेक्षा लोकहित को सदैव ही महत्व दिया है। जैनधर्म में तीर्थंकर, गणधर और सामान्य केवली के जो आदर्श स्थापित किये गये हैं और उनमें जो तारतम्यता निश्चित की गई है, उसका आधार विश्व-कल्याण, वर्ग-कल्याण और व्यक्ति-कल्याण की भावना ही है। इस त्रिपुटी में विश्व-कल्याण के लिए प्रवृत्ति करने के कारण ही तीर्थंकर को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। स्थानांगसूत्र में ग्रामधर्म, राष्ट्रधर्म आदि की उपस्थिति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जैन साधना केवल आत्महित या वैयक्तिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकास तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसमें लोकहित या लोक कल्याण की प्रवृत्ति भी पायी जाती है।[३१]

क्या जैनधर्म जीवन का निषेध सिखाता है ?

जैनधर्म में तप-त्याग की जो महिमा गायी गई है, उसके आधार पर यह भ्रान्ति फैलाई जाती है कि जैनधर्म जीवन का निषेध सिखाता है। अतः यहाँ इस भ्रान्ति का निराकरण कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जैनधर्म के तप-त्याग का अर्थ शारीरिक एवं भौतिक जीवन की अस्वीकृति नहीं है। आध्यात्मिक मूल्यों की स्वीकृति का यह तात्पर्य नहीं है कि शारीरिक एवं भौतिक मूल्यों की पूर्णतया उपेक्षा की जाय। जैनधर्म के अनुसार शारीरिक मूल्य अध्यात्म के बाधक नहीं, साधक हैं। निशीथभाष्य में कहा है कि मोक्ष का साधन ज्ञान है, ज्ञान का साधन शरीर है, शरीर का आधार आहार है।[३२] शरीर शाश्वत् आनन्द के कूल पर ले जाने वाली नौका है इस दृष्टि से उसका मूल्य भी है, महत्त्व भी है और उसकी सार-संभाल भी करना है। किन्तु ध्यान रहे, दृष्टि नौका पर नहीं, कूल पर होना चाहिए, शरीर की नौका-साधन के रूप में स्वीकृति जैनधर्म और सम्पूर्ण अध्यात्म विद्या का हार्द है। यह वह विभाजन रेखा है जो आध्यात्म और भौतिक वाद में अन्तर करती है। भौतिकवाद में उपलब्धियाँ या जैविक मूल्य स्वयमेव साध्य हैं, अन्तिम हैं, जबकि अध्यात्म में वे किन्ही उच्च मूल्यों का साधन हैं। जैनधर्म की भाषा में कहें तो साधक के द्वारा वस्तुओं का त्याग और ग्रहण, दोनो ही साधना के लिए है। जैनधर्म की सम्पूर्ण साधना का मूल लक्ष्य तो एक ऐसे निराकुल, निर्विकार, निष्काम और वीतराग मानस की अभिव्यक्ति है, जो कि वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के समस्त तनावों एवं संघर्षों को समाप्त कर सके। उसके सामने मूल प्रश्न दैहिक एवं भौतिक मूल्यों की स्वीकृति का नहीं है अपितु वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में शान्ति की संस्थापना का है। अतः जहाँ तक और जिस रूप में दैहिक और भौतिक उपब्धियाँ उसमें साधक हो सकती हैं, वहाँ तक वे स्वीकार्य हैं और जहाँ तक उसमें बाधक हैं, वहीं तक त्याज्य है। भगवान् महावीर ने आचारांग एवं उत्तराध्ययनसूत्र में इस बात को बहुत ही स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि जब इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्पर्क होता है, तब उस सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप सुखद-दुःखद अनुभूति भी होती है और जीवन में यह शक्य नहीं है कि इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्पर्क न हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उसके कारण सुखद या दु:खद अनुभूति न हो, अत: त्याग इन्द्रियानुभूति का नहीं, अपितु उसके प्रति चित्त में उत्पन्न होनेवाले राग-द्वेष का करना है[३३] क्योंकि इन्द्रियों के मनोज्ञ या अमनोज्ञ विषय आसक्तचित्त के लिए ही राग-द्वेष (मानसिक विक्षोभों) का कारण बनते हैं, अनासक्त या वीतराग के लिए नहीं।[३४] अत: जैनधर्म की मूल शिक्षा ममत्व के विसर्जन की है, जीवन के निषेध की नहीं।

जैन अध्यात्मवाद की विशेषताएँ

(अ) ईश्वरवाद से मुक्ति - जैन अध्यात्मवाद ने मनुष्य को ईश्वरीय दासता से मुक्त कर मानवीय स्वतनत्रता की प्रतिष्ठा की है। उसने यह उद्घोष किया कि न तो ईश्वर और न तो कोई अन्य शक्ति ही मानव के व्यवहार की निर्धारक है। मनुष्य स्वयं ही अपना निर्माता है। जैनधर्म ने किसी विश्वनियन्ता ईश्वर को स्वीकार करने के स्थान पर मनुष्य में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा की और यह बताया कि व्यक्ति ही अपनी साधना के द्वारा परमात्म दशा को प्राप्त कर सकता है। उसने कहा 'अप्पा सो परमप्पा' अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है। मनुष्य को किसी का कृपाकांक्षी न बनकर स्वयं ही पुरुषार्थ करके परमात्म-पद को प्राप्त करना है।

(ब) मानव मात्र की समानता का उद्घोष - जैनधर्म की दूसरी विशेषता यह है कि उसने वर्णवाद, जातिवाद आदि उन सभी अवधारणाओं की जो मनुष्य मनुष्य में ऊचँ-नीच का भेद उत्पन्न करती थी, अस्वीकार किया। उसके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं। मनुष्यों में श्रेष्ठता और कनिष्ठता का आधार न तो जाति विशेष या कुल विशेष में जन्म लेना है और न सत्ता और सम्पत्ति ही। वह वर्ण, रंग, जाति, सम्पत्ति और सत्ता के स्थान पर आचारण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। उत्तराध्ययनसूत्र के १२वें एवं २५वें अध्याय में वर्णव्यवस्था और ब्राह्मण की श्रेष्ठता की अवधारणा पर करारी चोट करते हुए यह कहा गया है कि, जो सर्वथा अनासक्त, मेधावी और सदाचारी है वही सच्चा ब्राह्मण है और वही श्रेष्ठ है। न कि किसी कुल विशेष में जन्म लेने वाला व्यक्ति।

(स) यज्ञ आदि बाह्य क्रिया-काण्डों का आध्यात्मिक अर्थ - जैन परम्परा ने यज्ञ, तीर्थ-स्थान आदि धर्म के नाम पर किये जानेवाल कर्म-काण्डों की न केवल आलोचना की, अपितु उन्हें एक आध्यात्मिक अर्थ भी प्रदान किया। उत्तराध्ययनसूत्र में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का सविस्तार विवेचन है। उसमें कहा गया है कि जीवात्मा अग्निकुण्ड है; मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ ही कलछी (चम्मच) है और कर्मों (पापो) का नष्ट करना ही आहुति है, यही यज्ञ शान्तिदायक है और ऋषियों ने ऐसे ही यज्ञ की प्रशंसा की है।[३५] तीर्थ-स्नान को भी आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करते हुए कहा गया है-धर्म जलाशय है, ब्रह्मचर्य घाट (तीर्थ) है, उसमें स्नान करने से ही आत्मा निर्मल और शुद्ध हो जाती है।[३६]

(द) दान, दक्षिणा आदि के स्थान पर संयम की श्रेष्ठता - यद्यपि जैन परम्परा ने धर्म के चार अंगो में दान को स्थान दिया है किन्तु वह यह मानती है कि दान की अपेक्षा भी संयम ही श्रेष्ठ है। उत्तराध्ययन में कहा गया है कि प्रतिमास सहस्रों गायों का दान करने की अपेक्षा संयम का पालन अधिक श्रेष्ठ है।[३७]

इस प्रकार हम देखते है कि जैन परम्परा ने धर्म को रूढ़िवादिता और कर्मकाण्डों से मुक्त करके अध्यात्मिकता से सम्पन्न बनाया है।

आध्यात्म और विज्ञान : सह सम्बन्ध

औपनिषदिक ऋषिगण, बुद्ध और महावीर भारतीय अध्यात्म परम्परा के उन्नायक रहे हैं। उनके आध्यात्मिक चिन्तन ने भारतीय मानस को आत्मतोष प्रदान किया है। किन्तु आज हम विज्ञान के युग में जीवन जी रहे हैं। वैज्ञानिक उपलब्धियाँ भी आज हमें उद्वेलित कर रही हैं। आज का मनुष्य दो तलों पर जीवन जी रहा है। यदि विज्ञान को नकारता है तो जीवन की सुख-सुविधा और समृद्धि के खोने का खतरा है। दूसरी ओर अध्यात्म को नकारने पर आत्म शान्ति से वंचित होता है। आज आवश्यकता है इन ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रतिस्थापित आध्यात्मिक मूल्यों और आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के समन्वय की। निश्चय ही 'विज्ञान और आध्यात्म' की चर्चा आज प्रासंगिक है।

सामान्यतया आज विज्ञान और अध्यात्म को परस्पर विरोधी अवधारणाओं के रूप में देखा जाता है। आज जहाँ अध्यात्म को धर्मवाद और पारलौकिता के साथ जोड़ा जाता है, वहाँ विज्ञान को भौतिकता और इहलौकिकता के साथ जोड़ा जाता है। आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों में विरोध देखा जाता है, लेकिन यह अवधारणा ही भ्रान्त है। प्राचीन युग में तो विज्ञान और अध्यात्म ये शब्द भी परस्पर भिन्न अर्थ के बोधक नहीं थे। महावीर ने आचारांगसूत्र में कहा है कि जो आत्मा है वहीं विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है।'[३८] यहाँ आत्मज्ञान और विज्ञान एक ही हैं। वस्तुतः विज्ञान शब्द वि+ज्ञान से बना है, 'वि' उपसर्ग विशिष्टता का द्योतक है। विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। आज जो विज्ञान शब्द केवल पदार्थ ज्ञान के रूप में रूढ़ हो गया है वह मूलतः विशिष्ट ज्ञान या आत्म ज्ञान ही था। आत्म-ज्ञान ही विज्ञान है। पुनः अध्यात्म शब्द ही अधि+आत्म से बना है। 'अधि' उपसर्ग भी विशिष्टता का ही सूचक है जहाँ आत्म की विशिष्टाता है, वही अध्यात्म है। चूँकि आत्मा ज्ञान स्वरूप ही है। अतः ज्ञान की विशिष्टता ही अध्यात्म है और वही विज्ञान है। फिर भी आज विज्ञान पदार्थ-ज्ञान के अर्थ में और अध्यात्म आत्म ज्ञान के अर्थ में रूढ़ हो गया है। मेरी दृष्टि में विज्ञान साधनों का ज्ञान है तो अध्यात्म साध्य का ज्ञान। प्रस्तुत निबन्ध में इन्ही रूढ़ अर्थों में विज्ञान और अध्यात्म शब्द का प्रायोग किया जा रहा है। एक हमें बाह्य जगत में जोड़ता है तो दूसरा हमें अपने से जोड़ता है। दोनों ही 'योग' हैं। एक साधन योग है तो दूसरा साध्ययोग। एक हमें जीवन शैली (Life style) देता है तो दूसरा हमें जीवन साध्य (Goal of life) देता है। आज हमारा दुर्भाग्य यही है कि, जो एक दूसरे के पूरक हैं, उन्हें हमने एक दूसरे का विरोधी मान लिया। आज आवश्यकता इस बात की है कि इनकी परस्पर पूरक शक्ति या अभिन्नता को समझा जाये।

आज हम विज्ञान को पदार्थ विज्ञान को पदार्थ विज्ञान मानते हैं। आज हमने यद्यपि 'पर' या 'अनात्म' के सन्दर्भ में इतना अधिक ज्ञान अर्जित कर लिया कि 'स्व' या 'आत्म' को विस्मृत कर बैठे। हमने परमाणु के आवरण को तोड़कर उसके जर्रे-जर्रे को जानने का प्रयास किया किन्तु दुर्भाग्य यही है कि अपनी आत्मा के आचरण को भेदकर अपने आपको नहीं जान सके। हम परिधि को व्यापकता देने में केन्द्र ही भुला बैठे। मनुष्य की यह परकेन्द्रितता ही उसे अपने आपसे बहुत दूर ले गई है। यही आज के जीवन की त्रासदी है। वह दुनिया को समझता है, जानता है, परखता है, किन्तु अपने प्रति तन्द्राग्रस्त है। उसे स्वयं यह बोध नहीं है, कि मैं कौन हूँ? मेरा कर्तव्य क्या है? लक्ष्य क्या है? वह भटक रहा है। मात्र भटक रहा है। आज से २५००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष पूर्व महावीर ने मनुष्य की उस पीड़ा को समझा था। उन्होंने कहा था कि कितने ही लोग ऐसे हैं जो नहीं जानते मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा गन्तव्य क्या है[३९]? यह केवल महावीर ने कहा हो ऐसी बात नहीं है। बुद्ध ने भी कहा था 'अत्तानं गवेस्सेथ' अपने को खोजो। औपनिषदिक ऋषियों ने कहा- 'आत्मानं' विद्धि- 'अपने आपको जानो' यही जीवन परिशोधन का मूल मन्त्र है। आज हमें पुनः इन्हीं प्रश्नों के उत्तर को खोजना है। आज का विज्ञान आपको पदार्थ जगत् के सन्दर्भ में सूक्ष्मतम सूचनायें दे सकता है किन्तु वे सूचनायें हमारे लिए ठीक उसी तरह अर्थहीन हैं जिस प्रकार जब तक आंख न खुली हो, प्रकाश का कोई मूल्य नहीं। विज्ञान प्रकाश है किन्तु अध्यात्म की आँख के बिना उसकी कोई सार्थकता नहीं है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा था अंधे व्यक्ति के सामने करोड़ों दीपक जलाने का क्या लाभ? जिसकी आँख खुली हो उसके लिए एक ही दीपक पर्याप्त है। आज केमनुष्य की भी यही स्थिति है। वह विज्ञान और तकनीकी के सहारे बाह्य जगत् में विद्युत की चकाचौंध फैला रहा है किन्तु अपने अन्तर्चक्षु का उन्मीलन नहीं कर रहा है। प्रकाश की चकाचौंध में हम अपने को ही नहीं देख पा रहे हैं, यह सत्य है कि प्राकाश आवश्यक है किन्तु आंखों खोले बिना उसका कोई मूल्य नहीं है। विज्ञान ने मनुष्य को शक्ति दी है। आज वह ध्वनि से भी अधिक तीव्र गति से यात्रा कर सकता है। किन्तु स्मरण रहे विज्ञान जीवन के लक्ष्य का निर्धारण नहीं कर सकता। लक्ष्य का निर्धारण तो अध्यात्म ही कर सकता है। विज्ञान साधन देता हे, लेकिन उनका उपयोग किसदिशा में करना होगा यह बतलाना अध्यात्म का कार्य है। पूज्य बिनोबा जी के शब्दों में 'विज्ञान में दोहरी शक्ति होती है एक विनाश शक्ति और दूसरी विकास शक्ति। वह सेवा भी कर सकता है और संहार भी। अग्नि नारायण की खोज हुई तो उससे रसोई भी बनाई जा सकती है और उससे आग भी लगाई जा सकती है। अग्नि का प्रायोग घर फूँकने में करना या चूल्हा जलाने में यह अक्ल विज्ञान में नहीं है। अक्ल तो आत्म-ज्ञान में है।'[४०] आगे वे कहते हैं- आत्मज्ञान है आँख और विज्ञान है पांव। अगर मानव को आत्मज्ञान नहीं तो वह अन्धा है। कहाँ चला जायेगा कुछ पता नहीं।'[४१] दूसरे शब्दों में कहें तो अध्यात्म देखता तो है लेकिन चल नहीं सकता उसमें लक्ष्य बोध तो है किन्तु गति की शक्ति नहीं। विज्ञान में शक्ति तो है किन्तु आँख नहीं है, लक्ष्य का बोध नहीं। जिस प्राकार अन्धे और लंगड़े दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही परस्पर सहयोग के अभाव में दावानल में जल मरते हैं, ठीक इसी प्राकार यदि आज विज्ञान और अध्यात्म परस्पर एक दूसरे के पूरक नहीं होंगे तो मानवता अपने ही द्वारा लगाई गई विस्फोटक शस्त्रों की इस आग में जल मरेगी। बिना विज्ञान के संसार में सुख नहीं आ सकता और बिना अध्यात्म के शांति नहीं आ सकती। मानव समाज की सुख (Pleasure) और शांति (Peace) के लिए दोनों का परस्पर सहयोग आवश्यक है। वैज्ञानिक शक्तियों का उपयोग मानव कल्याण में हो या मानव संहार में, इस बात का निर्धारण विज्ञान से नहीं, आत्मज्ञान या अध्यात्म से करना होगा। अणुशक्ति का उपयोग मानव के संहार में हो या मानव के कल्याण में, यह निर्णय करने का अधिकार उन वैज्ञानिकों को भी नहीं है, जो सत्ता, स्वार्थ और समृद्धि के पीछे अन्धे राजनेताओं के दास हैं। यह निर्णय तो मानवीय विवेक सम्पन्न निःस्पृह साधकों को ही करना होगा। यह सत्य है कि विज्ञान के सहयोग से तकनीक का विकास हुआ और उसने मानव के भौतिक दुःखों को बहुत कुछ कम कर दिया। किन्तु दूसरी और उसने मारक शक्ति के विकास के द्वारा भय या संत्रास की स्थिति उत्पन्न कर मानव की शान्ति को भी छीन लिया है। आज मनुष्य जाति भयभीत और संत्रस्त है। आज वह विस्फोटक अस्त्रों के ज्वालामुखीपर खड़ी है, जो कब विस्फोट कर हमारे अस्तित्व को निगल लेगी, यह कहना कठिन है। आज हमारे पास जिन संहारक अस्त्रों का संग्रह है वे पृथ्वी के सम्पूर्ण जीवन को अनेक बार समाप्त कर सकते हैं।

पूज्य विनोबा जी लिखते हैं 'जो विज्ञान एक ओर क्लोरोफार्म खोज करता है जिससे करूणा का कार्य होता है। वही विज्ञान अणु अस्त्रों की खोज करता है जिससे भयंकर संहार होता है। एक बाजू सिपाही को जख्मी करता है दूसरा बाजू उसको दुरुस्त करता है ऐसा गोरख धन्धा आज विज्ञान की मदद से चल रहा है। इस हालत में विज्ञान का सारा कार्य उसको मिलने वाले मार्गदर्शन पर आधारित है। उसे जैसा मार्गदर्शन मिलेगा, वह वैसा कार्य करेंगा।[४२]

यदि विज्ञान पर सत्ता के आकांक्षियों का, राजनीतिज्ञों का और अपने स्वार्थ की रोटी सेंकने वालों का अधिकार होगा तो वह मनुष्य जाति का संहार ही बनेगा। किन्तु इसके विपरीत यदि विज्ञान पर मानव-मंगल के द्रष्टा अनासक्त ऋषियों-महर्षियों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकार होगा, तो वह मानव के विकास में सहायक होगा। आज हम विज्ञान के माध्यम से तकनीकी प्रगति की उस ऊँचाई तक पहुँच चुके हैं जहाँ से लौटना भी सम्भव नहीं है। आज मनुष्य उस दोराहे पर खड़ा है जहाँ पर उसे हिंसा और अहिंसा दो राहों में से किसी एक को चुनना है। आज उसे यह समझना है कि वह विज्ञान के साथ किसको जोड़ना चाहता है, हिंसा को या अहिंसा को। आज उसके सामने दोनों विकल्प प्रस्तुत हैं। विज्ञान+अहिंसा=विकास। विज्ञान+हिंसा=विनाश। जब विज्ञान अहिंसा के साथ जुड़ेगा तो वह समृद्धि और शान्ति लायेगा, किन्तु जब उसका गठबन्धन हिंसा से होगा तो संहारक होगा और अपने ही हाथों अपना विनाश करेगा।

आज विज्ञान के सहारे मनुष्य ने जितना पाशविक बल संग्रहीत कर लिया है। वह उसका रक्षक न होकर कहीं भक्षक न बन जाये, यह उसे सोचना है। महावीर ने स्पष्ट रूप से कहा था 'अत्थि सत्थेन परंपरं, नत्थि असत्थेन परंपरं।' शस्त्र एक से बढ़कर एक हो सकता है किन्तु अहिंसा से बढ़कर अन्य कुछ नहीं हो सकता। आज सम्पूर्ण मानव समाज को यह निर्णय लेना होगा कि वे वैज्ञानिक शक्तियों का प्रयोग मानवता के कल्याण के लिए करना चाहते हैं या उसके संहार के लिए। आज तकनीकी प्रगति के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी कम हो गई है। आज विज्ञान ने मानव समाज को एक दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। आज हम परस्पर इतने निर्भर बन गये हैंकि एक दूसरे के बिना खड़े भी नहीं रह सकते, किन्तु दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव के कारण हमारे हृदयों की दूरी अधिक विस्तीर्ण हो गई है। हृदय की इस दूरी को पाटने का काम विज्ञान नहीं, अध्यात्म ही कर सकता है। विज्ञान का कार्य हे विश्लेषित करना और अध्यात्म का काम है संश्लेषित करना। विज्ञान तोड़ता है। विज्ञान वियोजक है तो अध्यात्म संयोजक। विज्ञान पर केन्द्रित है तो अध्यात्म आत्मकेन्द्रित। विज्ञान सिखाता है कि हमारे सुख-दुःख का केन्द्र वस्तुएँ हैं, पदार्थ हैं, इसके विपरीत अध्यात्म कहता है कि सुख-दुःख का केन्द्र आत्मा है। विज्ञान की दृष्टि बाहर देखती है अध्यात्म अन्तर में देखता है। विज्ञान की यात्रा अन्दर से बाहर की ओर है तो अध्यात्म की यात्रा बाहर से अन्दर की ओर होती रही तो वह शान्ति, जिसकी उसे खोज है, कभी नहीं मिलेगी। क्योंकि बहिर्मुखी यात्री शान्ति की खोज वहाँ करता है जहाँ वह नहीं है। शान्ति अन्दर है उसकी बाहर खोज व्यर्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सम्बन्ध में एक रूपक याद आता है। एक वृद्धा शाम के समय कुछ सी रही थी। संयोग से अंधेरा बढ़ने लगा और सूई उसके हाथ से छूटकर कहीं गिर पड़ी। महिला की झोपड़ी में प्रकाश का साधन नहीं था और प्राकाश के बिना सूई की खोज असम्भव थी। बुढ़िया ने सोचा क्या हुआ? अगर प्राकाश बाहर है तो सूई को वहीं खोजा जाये। वह उस प्रकाश में सूई खोजती रही, खोजती रही किन्तु सुई वहाँ कब मिलने वाली थी, क्योंकि वह वहाँ थी ही नहीं। प्रातः होने वाला था कि कोई यात्री उधर से निकला, उसने वृद्धा से उसकी परेशानी का कारण पूछा। उसने पूछा, अम्मा सूई गिरी कहाँ थी। वृद्धा ने उत्तर दिया 'बेटा' सूई गिरी तो झोपड़ी में थी, किन्तु उजाला नहीं था अतः वहाँ खोजना सम्भव नहीं था, उजाला तो बाहर था, इसलिए मैं यहां खोज रही थी। यात्री ने उत्तर दिया यह सम्भव नहीं है जो चीज जहाँ नहीं है, वहाँ खोजने पर मिल जाये। सूर्य का प्राकाश होने को है उस प्राकाश में सूई वहीं खोजे जहाँ गिरी है। आज मानव-समाज की स्थिति भी उसी वृद्धा के समान है। हम शान्ति की खोज वहाँ कर रहे हैं जहाँ वह होती ही नहीं। शान्ति आत्मा में है, अन्दर है? विज्ञान के सहारे आज शान्ति की खोज के प्रयत्न उस बुढ़िया के प्रयत्नों के समान निरर्थक ही होंगे। विज्ञान, साधन दे सकता है, शक्ति दे सकता है, किन्तु लक्ष्य का निर्धारण तो हमें ही करना होगा ।

आज विज्ञान के कारण मानव के पूर्वस्थापित जीवन मूल्य समाप्त हो गये हैं। आज श्रद्धा का स्थान तर्क ने ले लिया। आज मनुष्य पारलौकिक उपलब्धियों के स्थान पर इहलौकिक उपलब्धियों को चाहता है। आज के तर्क प्रधान मनुष्य को सुख और शान्ति के नाम पर बहलाया नहीं जा सकता लेकिन दुर्भाग्य यह है कि आज हम अध्यात्म के अभाव में नये जीवन मूल्यों का सृजन नहीं कर पा रहे हैं। आज विज्ञान का युग है। आज उस धर्म को जो, पारलौकिक जीवन की सुख सुविधाओं के नाम पर मानवीय भावनाओं का शोषण कर रहा है, जाना होगा। आज तथाकथित वे धर्म-परम्परायें जो मनुष्य को भविष्य के सुनहले अपने दिखाकर फुसलाया करती थीं, अब तर्क की पैनी छेनी के आगे अपने को नहीं बचा सकतीं। अब स्वर्ग में जाने केलिए नहीं जीना है अपितु स्वर्ग को धरती पर लाने के लिए जीना होगा। विज्ञान ने हमें वह शक्ति दे दी है। जब स्वर्ग को धरती पर उतारा जा सकता है, तब यदि हम इस शक्ति का उपयोग धरती पर स्वर्ग उतारने के स्थान पर, धरती को नरक बनाने में करेंगे तो इसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जवाबदेही हम पर ही होगी। आज वैज्ञानिक शक्तियों का उपयोग इस दृष्टि से करना है कि वे मानव कल्याण में सहभागी बनकर इस धरती को ही स्वर्ग बना सकें। विनोबा जी ने सत्य ही कहा है, आज विज्ञान का तो विकास हुआ, किन्तु वैज्ञानिक उत्पन्न ही नहीं हुआ। क्योंकि वैज्ञानिक वह है जो निरपेक्ष होता है। आज का वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों और पूँजीपतियों के इशारे पर चलने वाला व्यक्ति है। वह पैसे से खरीदा जा सकता है। यह तो वैज्ञानिक की गुलामी है। ऐसे लोग अवैज्ञानिक हैं यदि वैज्ञानिक (Scientist) वैज्ञानिक (Scientific) नहीं बना, तो विज्ञान मनुष्य के लिए ही घातक सिद्ध होगा। आज विज्ञान विज्ञान के पास नहीं अध्यात्म के पास है। विनोबा जी लिखते हैं कि आज इस युग में विज्ञान की जितनी ही शक्ति बढ़ेगी। आत्मज्ञान को उतनी ही शक्ति बढ़ानी होगी। आज अमेरिका इसलिए दुःखी है कि वहां विज्ञान तो है, पर अध्यात्म है नहीं, अतः सुख तो है शान्ति नहीं। इसके विपरीत भारत में आध्यात्मिक विरासत के कारण मानसिक शान्ति तो है, किन्तु समृद्धि नहीं। इसका समाधान अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय में निहित हैं। अध्यात्म शान्ति देगा, तो विज्ञान समृद्धि। जब समृद्धि और शान्ति दोनों ही एक साथ उपस्थित होगी, मानवता अपने विकास के परम शिखर पर होगी। मनव स्वयं अतिमानव के रूप में विकसित हो जायेगा। किन्तु इसके लिए प्रयत्न करना होगा। बिना अडिग आस्था और सतत पुरुषार्थ के यह सम्भव नहीं।

आज विज्ञान ने मनुष्य को सुख-सुविधा और समृद्धि तो प्रदान कर दी फिर भी मनुष्य भय और तनाव की स्थिति में जी रहा है। उसे आन्तरिक शान्ति उपलब्ध नहीं है, उसकी समाधि भंग हो चुकी है। यदि विज्ञान के माध्यम से कोई शान्ति आ सकती है तो वह केवल श्मशान की शान्ति होगी। बाहरी साधनों से न कभी आन्तरिक शांति मिली है न उसका मिलना सम्भव ही है। इस प्रसंग में उपनिषदों का एक प्रसंग याद आ रहा है। नारद जीवन भर वेद-वेदांग का अध्ययन करते रहे। उन्होंने अनेक विद्यायें (भौतिक विद्यायें) प्राप्त कर लीं किन्तु उनके मन को कहीं सन्तोष नहीं मिला। ये सनतकुमार के पास आये और कहने लगे मैंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। मैं शास्त्रविद तो हूँ किन्तु आत्मविद् नहीं।[४३] आज के वैज्ञानिक भी नारद की भाँति ही हैं। वे शास्त्रविद् तो हैं किन्तु आत्मविद् नहीं। आत्मविद् हुए बिना शांति को नहीं पाया जा सकता। यद्यपि मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम विज्ञान और उसकी उपलब्धियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को तिलांजलि दे दें। वैज्ञानिक उपलब्धियों का परित्याग न तो सम्भव है न औचित्यपूर्ण है। किन्तु अध्यात्म ही विज्ञान का अनुशासक हो तभी एक समग्रता या पूर्णता आयेगी। और मनुष्य एक साथ समृद्धि और शान्ति को पा सकेगा। ईसावास्योपनिषद् दोनों के सम्बन्ध को उचित बताते हुए उसका स्वरूप बता है। वह कहता है, जो पदार्थ-विज्ञान या अविद्या की उपासना करता है वह अन्धकार में, तमस में प्रवेश करता है क्योंकि विज्ञान अध्यात्म के बिना अन्धा है, साथ ही वह यह भी चेतावनी देता है कि जो केवल विद्या में रत हैं वे उससे अधिक अन्धकार में चले जाते हैं। अन्ध तमः प्राविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायं रताः'' ईशावास्योपनिषद्।।९।। वस्तुतः वह जो अविद्या और विद्या दोनों की एक साथ उपासना करता है वह अविद्या द्वारा मृत्यु को पार सकता है अर्थात् वह सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाता है और विद्या द्वारा अमृत प्राप्त करता है। विद्या चाविद्यां च यस्तवेदोभयं सह। सविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते-ईशावास्योपनिषद् ।।११।। वस्तुत यह अमृत आत्म-शान्ति या आत्मतोष ही है। जब विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय होगा तभी मानवता का कलयाण होगा। विज्ञान जीवन के कष्टों को समाप्त कर देगा और अध्यात्म आन्तरिक शान्ति को प्रदान करेगा। आचारांग में महावीर ने अध्यात्म के लिए 'अज्झत्थ' शब्द का प्रयोग किया है और यह बताया है कि इसी के द्वारा आत्म विशुद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः अध्यात्म कुछ नहीं है वह आत्म उपलब्धि या आत्म विशुद्धि की ही एक प्रक्रिया है उसका प्रारम्भ आत्मज्ञान से है और उसकी परिनिष्पत्ति आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अटूट निष्ठा में है। वस्तुतः अध्यात्म कुछ नहीं है वह आत्म उपलब्धि या आत्म विशुद्धि की ही एक प्रक्रिया है उसका प्रारम्भ आत्मज्ञान से है और उसकी परिनिष्पत्ति आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अटूट निष्ठा में है। वस्तुतः आज जितनी मात्रा में पदार्थ विज्ञान विकासित हुआ है उतनी ही मात्रा में आत्मज्ञान को विकसित होना चाहिए। विज्ञान की दौड़ में अध्यात्म पीछे रह गया है। पदार्थ को जानने के प्रयत्नों में हम अपने को भुला बैठे हैं। मेरी दृष्टि में आत्मज्ञान कोई अमूर्त, तात्विक आत्मा की खोज नहीं है, वह अपने आपको जानना है। अपने आपको जानने का तात्पर्य अपने में निहित वासनाओं और विकारों को देखना है। आत्मज्ञान का अर्थ होता है, हम यह देखें कि हमारे जीवन में कहां अहंकार छिपा पड़ा है कहां और किसके प्राति घृणा और विद्वेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के तत्त्व पल रहे हैं। आत्मज्ञान कोई हौव्वा नहीं है, वह तो अपने अन्दर झांककर अपनी वृत्तियों और वासनाओं को पढ़ने की कला है। विज्ञान द्वारा प्रदत्त तकनीक के सहारे हम पदार्थों का परिशोधन करना तो सीख गये और परिशोधन से कितनी जिसे शक्ति प्राप्त होती है यह भी जान गये किन्तु आत्म के परिशोधन की जो कला अध्यात्म के नाम से हमारे ऋषि-मुनियों ने दी थी, आज हम उसे भूल चुके हैं।

फिर भी विज्ञान ने आज हमारी सुख-सुविधा प्रदान करने के अतिरिक्त जो सबसे बड़ा उपकार किया वह यह कि धर्मवाद के नाम पर, जो अन्ध श्रद्धा और अन्धविश्वास पल रहे थे उन्हें तोड़ दिया, है। इसका टूटना आवश्यक भी था क्योंकि परलोक की लोरी सुनाकर मनुष्य समाज को अधिक समय तक भ्रम में रखना सम्भव नहीं था। विज्ञान ने अच्छा ही किया हमारा यह भ्रम तोड़ दिया, किन्तु हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि भ्रम का टूटना ही पर्याप्त नहीं है। इससे जो रिक्तता पैदा हुई उसे आध्यात्मिक मूल्य-निष्ठा के द्वारा ही भरना होगा। यह आध्यात्मिक मूल्य निष्ठा उच्च मूल्यों के प्राति निष्ठा है, जो जीवन को शान्ति और आत्मसंतोष प्रदान करते हैं।

अध्यात्म और विज्ञान का संघर्ष वस्तुतः भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का संघर्ष है। अध्यात्म की शिक्षा यही है कि भौतिक सुखसुविधाओं की उपलब्धि ही अन्तिम लक्ष्य नहीं हे। दैहिक एवं आत्मिक मूल्यों से परे सामाजिकता और मानवता के उच्च मूल्य भी हैं। महावीर की दृष्टि में अध्यात्मवाद का अर्थ है पदार्थ को परममूल्य न मानकर आत्मा को ही परममूल्य मानना। भौतिकवादी दृष्टि के अनुसार सुख और दुःख वस्तुगत तथ्य हैं। अतः भौतिकवादी सुखों की लालसा में वह वस्तुओं के पीछे दौड़ता है और उनकी उपलब्धि हेतु शोषण और संग्रह जैसी सामाजिक बुराइयों को जन्म देता है, जिससे वह स्वयं तो संत्रस्त होता ही है, साथ ही साथ समाज को भी संत्रस्त बना देता है। इसके विपरीत अध्यात्मवाद हमें यह सिखाता है कि सुख का केन्द्र वस्तु में न होकर आत्मा में है। सुख-दुःख आत्म केन्द्रित है। आत्मा या व्यक्ति ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है। वही अपना मित्र और वही अपना शत्रु है। सुप्रतिष्ठित अर्थात् सद्गुणों में स्थित आत्मा अपना मित्र है और दुप्रातिष्ठा आत्मा अपना शत्रु है। वस्तुतः आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि पदार्थों से न होकर सद्गुणों में स्थित आत्मा में होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अध्यात्मवाद के अनुसार देहादि सभी आत्मेतर पदार्थों के प्रति समत्व बुद्धि का विसर्जन साधना का मूल उत्स है। ममत्व का विसर्जन और ममत्व का सृजन यही जीवन का परममूल्य है। जैसे ही ममत्व का विसर्जन होगा समत्व का सृजन होगा, और समत्व का सृजन, होगा तो शोषण और संग्रह की सामाजिक बुराइयां समाप्त होंगी। परिमाणतः व्यक्ति आत्मिक शान्ति का अनुभव करेगा। अध्यात्मवादी समाज में विज्ञान तो रहेगा किन्तु उसका उपयोग संहार में न होकर सृजन में होगा, मानवता के कल्याण में होगा।

अन्त में पुनः मैं यही कहना चाहूँगा कि विज्ञान के कारण, जो एक संत्रास की स्थिति मानव समाज में दिखाई दे रही है, उसका मूलभूत कारण विज्ञान नहीं, अपितु व्यक्ति की संकुचित और स्वार्थवादी दृष्टि है। विज्ञान तो निरपेक्ष है वह न अच्छा है और न बुरा। उसका अच्छा या बुरा होना उसके उपयोग पर निर्भर करता है और इस उपयोग का निर्धारण व्यक्ति के अधिकार की वस्तु है। अतः आज विज्ञान को नकारने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है उसे सम्यकदिशा में नियोजित करने की और यह सम्यक दिशा अन्य कुछ नहीं, यह सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की व्यापक आकांक्षा ही है और इस आकांक्षा की पूर्ति अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय में है। काश मानवता इन दोनों में समन्वय कर सके, यही कामना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ

१. उत्तराध्ययनसूत्र ३२/९

२. वही ९/४८

३. वह ९/४७

४. आचारांग, ५/३६; ४/२७

५. उत्तराध्ययन २०/३७ (पूर्वार्द्ध)

६. उत्तराध्ययन २०/३७ (उत्तरार्द्ध)

७. आतुरप्रकरण २६, २७

८. आचरांग ५/१०४

९. भगवतीसूत्र १/९

१०. आचारांग ८/३१

११. अध्यात्मतत्त्वालोक ४/६

१२. समयसार टीका ३०५

१३. योगशास्त्र ४/५

१४. समयसार २७७

१५. तत्त्वार्थसूत्र १/१

१६. उत्तराध्ययनसूत्र २८/२

१७. सुत्तनिपात २८/८

१८. गीता ४/३४

१९. Psychology and Morals p. 32

२०. उत्तराध्ययन सूत्र २८/३०

२१. उत्तराध्ययन सूत्र २८/३५ तत्त्वार्थसूत्र १/२

२२. आत्मसिद्धिशास्त्र प. ४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. समयसार टीका १३२

२४. जैन, बौद्ध और गीता का साधनामार्ग, अध्याय ५

२५. भक्तपरिज्ञा ६५-६६

२६. आचारांगनिर्युक्ति २२१

२७. सुत्रकृतांग २/१/३

२८. उतराध्ययन ६/९-११

२९. आवश्यकनिर्युक्ति ९५-९७

३०. प्रश्नव्याकरणसूत्र २/१/२

३१. स्थानांगसूत्र १०

३२. निशिथभाष्य ४७/९१

३३. आचारांग २/१५

३४. उत्तराध्ययन ३२/१०१

३५. उततराध्ययन १२/४४

३६. वही १२/४६

३७. वही ९/४०

३८. जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया ।- आचारांग

३९. आचारांग १/१/१

४०. आत्मज्ञान और विज्ञान (बिनोवा)

४१. वही

४२. आत्मज्ञान और विज्ञान (बिनोवा)

४३. अप्पा खलु मित्तं अमित्तं च सुपट्ठिओ दुपट्ठिओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का धंधा

-डा. सागरमल जैन

आज धर्म भी एक धन्धा है,
धन्धा होकर भी अन्धा है।
इस धन्धे मे होती है, सौदे बाजी,
यहाँ भगवान को भी रिश्वत दी जाती है।
एक रुपये और नरियल में,
पास क़राने की गारन्टी ली जाती है।
एक-दो परसेन्ट की पार्टनरशिप में,
शेष सब हडप जाने की साजिश भी यहाँ होती है।
भगवान को भेंट के नाम पर,
फुसलाया जाता है।
फिर अपना काम निकालकर,
तिलक करने के बहाने,
अंगूठा दिखाया जाता है।
प्रभु का प्रसाद बताकर,
सब कुछ हडप कर लिया जाता है।
धर्म के साईनबोर्ड के नीचे
धर्म का बाना पहन खड़ा शैतान
अपने स्वार्थ की दुकान चलाता है।
वाक् जाल की माया से
खूब दौलत बटोरता है।
चमत्कारो के चकमे दिखाकर
जनता को उल्लू बनाता है।
स्वर्ग का परवाना
और नरक का भय दिखाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनता को लूटा जाता है।
धर्म का यह धन्धा,
है सबसे अच्छा,
इसमे नहीं लगता है, पूँजी पल्ला।
बिन मेहनत पद, प्रतिष्ठा और पैसा
सब कुछ तो मिल जाता है।
अधिक क्या कहे,
स्वर्ग की बैंक भी खाता खुल जाता है।
यह एक ऐसा धंधा है,
भीतर से हो चाहे काला,
बाहर से तो पूरा उजला है।
पर याद रखो तुम,
सबको दे सकते हो धोखा,
पर तुम्हारे भीतर, है जो बैठा
वह सब कुछ जानता है,
तुम्हारी सारी कलाबाजी पहचानता है
तुम्हारा परमात्मा
बाहर नही, भीतर बैठा है
खुद को दिया गया धोखा
परमात्मा से धोखा है।
धर्म-धन्धा नही, मानवता की सेवा है
धर्म में लूटना नही,
लुट जाना पड़ता है।
यह कुछ पाना नहीं, खोना ही खोना है।
सेवा और समर्पण ही अर्पण है
खुद का ही तर्पण है।
यहाँ खुदी को मिटा, खुदा को पाया जाता है।
तेरे और मेरे भेद मिटा सबको अपनाया जाता है।
आत्मा को ही परमात्मा बनाय जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन्दगी का फलसफा

-डा. सागरमल जैन

जिन्दग़ी ले आई, हम आगये इस जहाँ में,
एक दिन मौत ले जायेगी, चले जायेगें इस जहाँ से।
न यहाँ आना हमारे हाथ में है,
और न जाना ही हमारे हाथ में है।
आने और जाने में, यहाँ हमारी मर्जी नहीं चलती।
फिर भी यारो हताश होने की कोई बात नहीं है,
यह पूरी जिन्दग़ी तो तुम्हारे हाथ में है।
जिन्दग़ी तो एक ताश का खेल है,
पत्तों का रोना मत रोओ,
हाथ बनाने की कोशीश करते रहो,
जिन्दग़ी का फलसफा यह है,
जो गया सो बीत गया
वह फिर तुम्हारे हाथ नहीं आना है,
आने वाला कल कैसा होगा?
यह भी पूरी तरह तुम तय नहीं कर सकते हो,
फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं,
खेल खेलना तो तुम्हारे हाथ में ही है।
बीते कल की चिन्ता छोड़ों, वह तुम्हारे हाथ नही आना हैं।
और सुनहले भविष्य की कल्पना भी मिथ्या साबित हो सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर भी आज और अभी तो तुम्हारे हाथ में है,
उसे खुशी से तो जी सकते हो।
भूत और भावी का रोना क्यो रोते हो?
जो आज तुम्हारे हाथ में है,
उसके सहारे जिन्दगी बना सकते हो।
जीवन तो सदा वर्तमान में जिया जाता है,
जो भूत की चिन्ता और भविष्य की कल्पना छोड़ वर्तमान मे जीता है,
वही तो जग में सुखी होता है।
जिन्दगी तो बस जी भर जीने का नाम है।
यह कोई पुलावी ख्याल नहीं।
यहाँ तो गुजर गया उसका गम न करो
और आने वाला कल है
उसके सुनहले सपने भी मत संजोओ।
जो गुजरे कल का रोना नही रोता है,
और आने वाले कल की फिक्र का फांका करता है,
सही मे वही जिन्दगी का लुफ्त उठाता है।
क्या वह खाक जीयेगा, जो गुजरे कल का रोना रोता है।
या फिर आने वाले कल का ताना-बाना बुनता है
यारों जो कुछ कुदरत की नियामत, आज तुम्हे मिली है
उसे मौज-मस्ती से जी लो।
जिन्दगी का जाम, तो तुम्हारे हाथ में है,
इसे तो छक कर पीलो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. सागरमल जैन

जन्म तिथि	:	दि. 22.02.1932
जन्म स्थान	:	शाजापुर (म.प्र.)
शिक्षा	:	साहित्यरत्न : 1954 एम.ए. (दर्शन शास्त्र) : 1963 पी–एच. डी. : 1969
अकादमिक उपलब्धियाँ	:	प्रवक्ता म.प्र. शास. शिक्षा सेवा (1964–67), सहायक प्राध्यापक (1968–85), प्राध्यापक (प्रोफेसर) (1985–89), निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी (1979–97)
लेखन	:	30 पुस्तकें, 25 लघु पुस्तिकाएँ
सम्पादन	:	150 पुस्तकें
सम्पादक	:	जैन विद्या विश्वकोष (पार्श्वनाथ विद्यापीठ की महत्वाकांक्षी परियोजना) 'श्रमण' त्रैमासिक शोध पत्रिका
पुरस्कार	:	प्रदीपकुमार रामपुरिया पुरस्कार (1986,1998), स्वामी प्रणवानन्द पुरस्कार (1987), डिप्टीमल पुरस्कार (1992), आचार्य हस्तीमल स्मृति सम्मान (1994), विद्यावारिधि सम्मान (2003), कलां मर्मज्ञ सम्मान (2006), जैन प्रेसीडेन्शियल अवार्ड (यू.एस.ए. 2007), गौतमगणधर पुरस्कार (2008), आचार्य तुलसी प्राकृत पुरस्कार (2009).
सदस्यः अकादमिक समितिः		विद्वत् परिषद, भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं मानद निदेशक, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर।
सम्प्रति		संस्थापक एवं निदेशक प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)
विदेश भ्रमण		शिकागो, राले, ह्यूस्टन, न्यूजर्सी, उत्तरी करोलीना, वाशिंगटन, सेनफांसिस्को, लॉस एंजिल्स, फिनीक्स, सेंट लूईस, पिट्सबर्ग, टोरण्टो, न्यूयार्क, कनाडा और लंदन यू. के.।

प्राच्य विद्यापीठ : एक परिचय

डॉ. सागरमल जैन पारमार्थिक शिक्षण न्यास द्वारा सन् 1997 से संचालित प्राच्य विद्या पीठ, शाजापुर आगरा–मुम्बई राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित इस संस्थान का मुख्य उदेश्य भारतीय प्राच्य विद्याओं के उच्च स्तरीय अध्ययन, प्रशिक्षण एवं शोधकार्य के साथ–साथ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करना है।

इस विद्यापीठ में जैन, बौद्ध और हिन्दु धर्म आदि के लगभग 12,000 दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त 700 हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भी है। यहाँ 40 पत्र पत्रिकाएँ भी नियमित आती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org